कमरे में हाथी, जिसे हम देखना नहीं चाहते

विमला रामचन्द्रन



कई दशकों से सेवाकालीन प्रशिक्षण की अधिकतर पहलकदमियों का ध्यान विषय के ज्ञान पर केन्द्रित है – जिसे अन्य शब्दों में काठिन्य निवारण भी कह दिया जाता है। इस परिघटना का प्रारम्भ डी.पी.ई.पी. के दिनों (यानी 1994 के समय) में देखा जा सकता है जब सेवाकालीन प्रशिक्षण को मजबूती देने के लिए एक बहुत जबरदस्त प्रोजेक्ट चलाया गया था। इसी का नतीजा था कि राज्य परियोजना कार्यालयों ने शिक्षकों के लिए प्रशिक्षण-मॉड्यूल [मॉड्यूल यानी पाठ्यक्रम-इकाई] बनाने के लिए विशेषज्ञों को भाड़े पर लिया। दिलचस्प बात यह थी कि डी.पी.ई.पी. के दिनों में भी किसी ने यह जानने की कोशिश नहीं की कि शिक्षकों की आवश्यकता क्या है, वे चाहते क्या हैं और उसे उन तक पहुँचाने का सबसे बेहतर तरीका क्या है।

बहुत साल पहले, 1998 में मुझे शिक्षकों के लैंगिक संवेदीकरण के एक मॉड्यूल पर काम करने को कहा गया था। यह लैंगिकता के मुद्दे को मुख्यधारा में लाने के उस उद्यम के हिस्से के तौर पर होना था जिसे डी.पी.ई.पी. कार्यक्रम को सहायता करने वाले दानकर्ताओं द्वारा बढ़ावा दिया जा रहा था। इसके लिए मैंने कुछ राज्यों (राजस्थान, मध्य प्रदेश और आंध्र प्रदेश) के प्राइमरी स्कूल-शिक्षकों के समूहों से मिलना तय किया। मैंने जो कुछ सुना और देखा, वह मुझ जैसे बाहरी व्यक्ति के लिए आँखें खोल देने जैसा ही नहीं था बल्कि कमरे में मौजूद उस हाथी को देखने जैसा था जिसे कोई भी देखना नहीं चाहता था। शिक्षक-अध्यापक, विशेषज्ञ और प्रशासनिक अधिकारी धरातल की स्थिति से परिचित थे लेकिन अजीब बात यह थी कि प्रशिक्षण-सामग्री या प्रशिक्षण-डिजाइन में उसे कभी भी ध्यान में नहीं रखा जाता था। हैरत की बात यह भी है कि इसी विषय पर 2016 में बनी विशेषज्ञ-कमेटी में बैठते हुए मैं पाती हूँ कि अधिक कुछ नहीं बदला है और हम अब भी मुँह दूसरी ओर फेरे हुए हैं।

1998 में मैंने शिक्षकों के एक समूह से पूछा था कि प्रभावशाली सीखने-सिखाने के रास्ते में क्या बाधाएँ थीं? हमने छोटे समूहों में बैठकर इन बाधाओं को सूचीबद्ध करने का निर्णय लिया। हमने ये सब बातें कीं जिनकी चर्चा मैं नीचे कर रही हूँ।

सेवानिवृत्त होने के कगार पर बैठे एक शिक्षक ने कहा कि बच्चों में उसका विश्वास ही उसे काम करने के लिए प्रेरित करता था। वे गणित के एक बहुत ही प्रभावशाली और प्रतिबद्ध शिक्षक के रूप में जाने जाते थे और डी.पी.ई.पी. कार्यक्रम ने उन्हें एक स्रोत-व्यक्ति के तौर पर चिह्नित किया था। उन्होंने यह भी कहा कि वे ऐसे कई शिक्षकों को जानते हैं जिनका मानना है कि 'ये बच्चे नहीं सीख सकते......' या कि 'लड़कियों को गणित समझ में नहीं आता' या, जो इससे भी बुरा है, कि 'समुदाय विशेष के बच्चे मन्दबुद्धि हैं'..... उनका मानना था कि शिक्षकों द्वारा सबसे पहले पार की जाने वाली बाधा उनकी स्वयं की कमियाँ, दृष्टिकोण और पूर्वाग्रह हैं। इसके बावजूद सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण में बस कभी-कभार ही गहरी जड़ लिए हुए मूल्यों और पूर्वाग्रहों को सम्बोधित किया जाता था। इस शिक्षक की व्याख्यानुसार पहला कदम यह सुनिश्चित करने का है कि शिक्षक इस बात में विश्वास करें कि बच्चे सीख सकते हैं, उनका लिंग, आर्थिक स्थिति, माता-पिता का व्यवसाय, जाति-समुदाय चाहे कुछ भी हो।

मूल्यों और धारणाओं-विश्वासों पर चर्चा करते हुए कुछ प्रतिभागियों का तर्क था कि पाठ्यपुस्तकें और सीखने-सिखाने की सामग्री प्रचलित धारणाओं और पूर्वाग्रहों को बल प्रदान करती हैं। पुरुषों के लिए क्या सही है और महिलाओं के लिए क्या, और जाति-सम्बन्धी विशेष कार्य क्या हैं, इसके बारे में परम्परागत विचार

> "पाठ्यपुस्तकों में अपनी, मैंने पढ़ा कि बस पुरुष ही होते हैं राजा और सिपाही
> जब तक कि मैंने पढ़ी नहीं थी वह पुस्तक जिसमें प्रसिद्ध रानियों ने किया राज और लड़ीं दुश्मनों से।
> पाठ्यपुस्तकों में अपनी, मैंने पढ़ा कि बस पुरुष ही होते हैं डॉक्टर,
> जब गए डॉक्टर के पास तो देखा कि वह महिला थी।
> पाठ्यपुस्तकों में अपनी, मैंने पढ़ा कि बस पुरुष ही करते हैं किसानी मेरे देश में
> मगर रेल-यात्रा करते हुए मैंने देखा महिलाओं को, काम करते हुए खेतों में
> मैंने सीखा है कि मुझे देखकर भी सीखना है कुछ-कुछ।"
>
> *[पूजा, राम्या, अनुज, उत्कर्ष – बड़ौदा से कक्षा-7 के विद्यार्थियों की रचना, शिक्षा में लैंगिक मुद्दों पर फ़ोकस-ग्रुप,एन.सी.एफ़. 2005 से उद्धृत (यहाँ, पर अँग्रेजी से हिन्दी अनुवाद)]*

हमारी पाठ्यपुस्तकों में वाक्याशों, उदाहरणों और चित्रों में झलकते हैं और बने रहते हैं। ग्रामीण और शहरी से सम्बद्ध बनी-बनाई, प्रचलित धारणाओं को न केवल बढ़ावा दिया जाता है बल्कि शहरी को ग्रामीण के और गैर-जनजातीय को जनजातीय के मुकाबले प्राथमिकता दी जाती है। शिक्षकों ने कई सारे विषयों में से ऐसे लोगों और स्थितियों के उदाहरण दिए, जो शहर पर ही केन्द्रित हैं।

नायक और नेता हमेशा पुरुष, तथा देखभाल करने वालीं और घर चलाने वालीं हमेशा महिलाएँ होती हैं। ये प्रचलित धारणाएँ और पूर्वाग्रह प्रशिक्षण-कार्यक्रमों में न तो चर्चा में आते हैं और न ही इन्हें चुनौती दी जाती है, क्योंकि ध्यान तो गणित या विज्ञान या भाषा के विशेष विषयों पर ही केन्द्रित रहता है।

चर्चा का तीसरा विषय राजकीय प्राथमिक स्कूलों पर था। 1998 में बहुत बड़ी संख्या में स्कूल मल्टी-ग्रेड (बहुकक्षीय – यानी कई कक्षाओं के विद्यार्थियों का एक 'कक्षा' में इकट्ठे पढ़ना) स्कूल थे और आज भी यह प्रतिशत बहुत महत्वपूर्ण है। वे या तो औपचारिक तौर पर मल्टी-ग्रेड हैं (जब स्कूलों में पाँच कक्षाओं के लिए पाँच से कम शिक्षक हों) या अनौपचारिक तौर पर मल्टी-ग्रेड हैं (जब शिक्षक बारी-बारी अनुपस्थित रहते हैं)। लेकिन सेवा-पूर्व शिक्षक-शिक्षा और सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण, दोनों में मानकर चला जाता है कि एक कक्षा के लिए एक शिक्षक होगा। दुर्भाग्य से यही तब भी था जब 1990 के दशक के मध्य में मध्य प्रदेश और राजस्थान जैसे राज्यों ने हजारों एकल-शिक्षक स्कूल खोले (ई.जी. एस. केन्द्र, राजीव गांधी पाठशाला, शिक्षाकर्मी स्कूल)। कुछ शिक्षकों ने बताया कि उन्हें मल्टी-ग्रेड कक्षा को सम्भालना नहीं आता था और उन्हें खुद ही स्थिति को झेलने के लिए छोड़ दिया गया। यह विशेष तौर से इसलिए हतोत्साहित करने वाली बात थी क्योंकि भारत तो इस क्षेत्र में नवाचारों का देश रहा है – फिर वह चाहे ऋषिवैली प्रयोग रहा हो या फिर मॉन्टेसरी स्कूलों द्वारा किया गया काम। नतीजा यह कि आनन्दपूर्ण शिक्षण और बाल-केन्द्रित कक्षाओं की तरह की कई पहलकदमियों की कोई सुनवाई न हुई, क्योंकि अधिकतर शिक्षक ऐसी स्थिति से निबटने की कोशिश कर रहे थे जिसे हमारे प्रशिक्षकों ने स्वीकारने से इनकार कर दिया।

जब 'कठिनाइयों के बिन्दुओं' का जिक्र आया तो शिक्षकों के समूह हँसी और चुटकुलों में फूट पड़े। व्हाट्सैप के दिनों से पहले के जमाने के कई चुटकुले थे और शिक्षकों को 'काठिन्य निवारण' के नजरिए पर गम्भीरता से बात करने के लिए मनाने में कुछ समय लगा। सिद्धान्त: शिक्षक-अध्यापक और विषय-विशेषज्ञ कक्षा में शिक्षकों के सामने आने वाली अकादमिक कठिनाई के बिन्दुओं को चिह्नित करते हैं और उनको सम्बोधित कर पाने के लिए स्वतंत्र शैक्षणिक इकाई के रूप में 'मॉड्यूल' तैयार करते हैं। माना जाता है कि विद्यार्थियों की उत्तर-पुस्तिकाओं का सघन विश्लेषण, विशेषज्ञों को कठिनाई भरे बिन्दुओं को चिह्नित कर पाने में मददगार होता है। दिलचस्प बात यह है कि शिक्षकों का कहना है कि उनकी अवधारणात्मक समझ कमजोर है और विशेष मुद्दों या विषयों (मसलन, गणित में स्थानीय मान या भिन्न) पर केन्द्रित प्रशिक्षण-कार्यक्रम अस्पष्ट अवधारणाओं को पुन: सीखने में मददगार नहीं है। विषय-विशेष केन्द्रित, सेवाकालीन प्रशिक्षण के प्रति अधिक व्यापक, सम्पूर्णता लिए हुए तथा बुनियादी अवधारणाओं से होकर गुजरता नजरिया शुरुआत में महत्वपूर्ण होगा।

एक और दिलचस्प रहस्योद्घाटन यह था कि प्रशिक्षण के लिए आने वाले शिक्षकों का चयन बहुत बार बिना किसी आधार के, बस यूँ ही किया जाता था और इस बात की कोई गारण्टी नहीं थी कि गणित पढ़ाने वाले एक समूह में होंगे और भाषा में कठिनाई का सामना करने वाले किसी अन्य समूह में। कुछ शिक्षकों ने कहा कि एक समूह-विशेष "प्रशिक्षण-शिक्षकों" का समूह है – यानी वे, जो सब प्रशिक्षण-कार्यक्रमों में होते हैं। और वे भी हैं जो किसी भी प्रशिक्षण-कार्यशाला में नहीं होते। ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है जिसके तहत नजर रखी जा सके कि कौन-कौन प्रशिक्षण में भाग ले चुके हैं, उन्होंने किस तरह के प्रशिक्षण में भाग लिया है तथा उनकी क्षमताओं को बढ़ाने के लिए और क्या कुछ करने की जरूरत है। यह स्थिति आज भी ज्यों की त्यों है। भारत में कार्यरत शिक्षकों के प्रबन्धन के तरीके से सम्बद्ध हाल ही में किए गए एक अध्ययन (विमला रामचन्द्रन आदि, न्यूपा,2015) में हमने पाया कि सेवाकालीन प्रशिक्षण में शिक्षकों की सहभागिता पर नजर रखने के लिए कोई भी सूचना-प्रबन्धन व्यवस्था (एम.आइ.एस.) नहीं है। इतना ही चौंकाने वाली बात यह है कि अधिकतर राज्यों में विषय-विशेष से सम्बद्ध प्रशिक्षण को शिक्षकों की जरूरतों से सम्बद्ध नहीं किया जाता। नतीजा यह कि 2014 और 2015 में जिन शिक्षकों से हम मिले, उनमें से अधिकतर ने कहा कि वे सेवाकालीन प्रशिक्षण से ऊब चुके हैं और वह उनके लिए कक्षा में कुछ खास उपयोगी नहीं है।

जिन नौ राज्यों को अध्ययन में शामिल किया गया, उनमें से किसी में भी शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए प्रभावशाली नीति नहीं थी। प्रशिक्षण एक बहुत ही अस्थाई तरीके से किया जाता है, और इसके लिए लगभग सम्पूर्ण धनराशि केन्द्र की दो योजनाओं (एस.एस.ए. तथा आर.एम.एस.ए.) से जुटाई जाती है; और इसलिए प्रशिक्षण की व्यवस्था आवश्यक धनराशि की उपलब्धता तथा उससे सम्बद्ध औपचारिकताओं और प्राथमिकताओं पर निर्भर रहती है। प्रशिक्षण कितना हो रहा है, यह स्थिति भी अलग-अलग राज्य में अलग-अलग थी। सबसे महत्वपूर्ण, ऐसा कोई आँकड़ों का आधार भी नहीं है जो किए गए प्रशिक्षणों की संख्या अंकित करता हो और साथ ही उन मुद्दों/विषयों को चिह्नित, जो प्रशिक्षण में हुए हों।

सारणी 1 : गत सालों में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले प्राथमिक शिक्षकों की संख्या और प्रतिशत (अखिल-भारतीय)

	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2009-10	2010-11	2011-12	2012-13
प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या	1706214	1688255	2072961	2010873	2035106	1892474	2285050	1893841
प्रशिक्षित शिक्षकों का प्रतिशत	36.4%	32.3%	36.8%	34.7%	35.0%	29.6%	34.2%	25.8%

(स्रोत : विमला रामचन्द्रन आदि, न्यूपा, 2015)

यह तो एक जानी-मानी बात है कि राज्यों को शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण के लिए एस.एस.ए. तथा आर.एम.एस.ए. योजनाओं के तहत काफी संसाधन मिलते हैं। उदाहरण के लिए 2012-13 के वित्त-वर्ष के लिए एस.एस.ए. के तहत राज्यों हेतु 1273 करोड़ रुपयों की धनराशि स्वीकृत की गई थी जबकि उसका लगभग आधा (619 करोड़ रुपये) ही असल में खर्च किए गए थे।[1] आर.एम.एस.ए. के लिए आँकड़े इससे काफी कम थे – शिक्षक-प्रशिक्षण के लिए केवल 18 करोड़ रुपये अलग से रखे गए थे हालाँकि इस मद पर राज्य द्वारा होने वाले व्यय का काफी बड़ा हिस्सा यही था।[2] 2005-06 से 2012-13 के बीच देश भर में प्रशिक्षण पाने वाले प्राथमिक शिक्षकों की संख्या में बहुत कम प्रगति हुई हालाँकि यह संख्या 2007-08 में और फिर 2011-12 में जरूर बढ़ी (सारणी-1)। इस पूरी तस्वीर को और भी गम्भीर बनाने वाली बात है कि इस समयकाल में सेवाकालीन प्रशिक्षण के तहत 2005-06 में पूरे भारत के मात्र 36.4 % शिक्षक ही आए और 2011-12 में मात्र 34.2% - तथा 2012-13 में यह प्रतिशत घटकर 25.8% पर आ गया।

शिक्षकों का लैंगिक मुद्दों के प्रति संवेदीकरण, सामाजिक समता, बच्चों की स्कूली शिक्षा पर गरीबी का असर और थोड़े बहुत साधनों वाले परिवारों द्वारा अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों से निकाल लेने की चौंका देने की हद तक की प्रवृत्ति हमेशा चुनौती बने रहे हैं। साथ ही शिक्षकों द्वारा उस सबको अनसीखा जाना, जो उन्होंने विद्यार्थी के तौर पर सीखा था और अवधारणाओं को फिर से सीखना भी कोई आसान काम नहीं है। पोलैण्ड जैसे देशों में कई-कई साल तक बहुत मेहनत की गई और उसके बाद ही कुछ आगे बढ़ पाने का रास्ता बन पाया।

वर्तमान में सेवाकालीन शिक्षक-प्रशिक्षण के प्रभावशाली न होने का एक मुख्य कारण कुल मिलाकर प्रशिक्षण कार्यक्रमों की निर्मिति की प्रकृति है। निरन्तर उपदेशात्मक, विषयानुसार लेक्चर को प्रशिक्षण का पसन्दीदा तरीका बनाया जाना प्रवृत्तियों, प्रथाओं और कक्षा में शिक्षकों के सामने आने वाली चुनौतियों को सम्बोधित किए जाने में बाधा बना है। असल में तो संवेदीकरण में प्रवृत्तियों-नजरियों, काम की संस्कृति, स्कूल-स्तरीय प्राथमिकताओं, संसाधनों की उपलब्धता और निगरानी शामिल हैं। इसलिए यह शब्द – प्रशिक्षण – उन सब व्यापक मुद्दों को अपने में नहीं समेटता जिन्हें एक साथ सुलझाने की आवश्यकता है। यह प्रक्रिया प्रशिक्षण से शुरू हो सकती है लेकिन आगे चलकर उन समस्याओं और मुद्दों को सुलझाने की ओर बढ़ना होगा जिनका सामना शिक्षकों को दिन-प्रतिदिन करना पड़ता है। प्रशिक्षित शिक्षकों ने 'शिक्षाकर्मी, राजस्थान' में अनुभव-आधारित प्रशिक्षण की ताकत की बात की तथा बताया कि किस तरह उसने उन्हें इन्सानों के तौर पर परिवर्तित किया और अच्छे शिक्षक बनाया। इसी तरह, गरीबों के समर्थन में नजरिये को पोषित करने की 'महिला समाख्या' की सामर्थ्य इस वजह से है कि उस द्वारा सम्पूर्णता लिए हुए व्यापक नजरिया अपनाया गया।

विभिन्न अनुभव-आधारित प्रशिक्षण कार्यक्रमों पर विचार करें तो कुछ सामान्य सिद्धान्तों की एक सूची बनाई जा सकती है[3]:

- अधिकतर अनुभव-आधारित या परिवर्तनगामी प्रशिक्षण-कार्यक्रमों के पहले कदम में एक ऐसा माहौल तैयार करना शामिल होता है जिसमें प्रशिक्षु अपने काम के बारे में बात करते हैं, अपने अनुभवों पर विचार करते हैं, कटु आलोचना या आकलन के किसी भय के बिना चर्चा करने में आश्वस्त महसूस

---

[1] स्रोत : एम.एच.आर.डी. की वेबसाइट पर मौजूद एस.एस.ए. की ऑडिट रिपोर्टों से एकत्र आँकड़े।

[2] स्रोत : आर.एम.एस.ए. प्रोग्राम के चौथे जॉएंट रिव्यू मिशन को रिपोर्ट किए गए आँकड़ों से लेखक द्वारा की गई गणना।

[3] एक और भी लम्बी चर्चा 1998 में प्रकाशित की गई थी। देखिए, Vimala Ramachandran: En-gendering Development: Lessons from the Social Sector programmes in India. Indian Journal of Gender Studies Vol 5, Number 1, pp 49 to 63

करते हैं और इस तरह वास्तविक खोज और परस्पर सीखने के लिए एक माहौल बनाते हैं।

- परम्परागत प्रशिक्षण-कार्यक्रमों में प्रशिक्षक जानकारी देने का काम करता है। लेकिन जब हमारा सामना मनोवृत्तियों से होता है तो जानकारी-हस्तांतरण ही पर्याप्त नहीं होता और ऐसा करना प्रतिकूल भावना तथा विरोध की ओर भी ले जा सकता है। प्रतिभागियों को अपने स्कूल, विद्यार्थियों, परिवार और समुदाय के बारे में बात करने का मौका देते हुए, जानकारी को उनसे बहुत ही प्रेमभाव के साथ निकलवाना होता है। सहायक (प्रशिक्षक) की भूमिका जानकारियों को सूचीबद्ध और वर्गीकृत करने की है। साथ ही, समूह को उस प्रक्रिया में शामिल करने की भी, जिसके चलते वे प्रत्येक तथ्य को बहुत आराम से तथा ईमानदारी से खोजते-जाँचते हुए व्यक्तिगत मूल्यों से प्रभावित कथनों को 'तथ्यों' से अलग करें। अधिकार स्थितियों में समूह से जानकारियाँ लेने पर लगभग वे सब मुद्दे उठकर आ जाते हैं जिन पर बात होना आवश्यक है।

- समूह से जानकारी और सूचनाएँ उत्पन्न कर लिए जाने के बाद अगला कदम सम्पूर्ण समूह को विश्लेषण में शामिल करने का है। हम ऐसा कर पाते हैं तो आमतौर पर होने वाली इस प्रतिक्रिया से बचा जा सकता है, कि 'आप जो कह रहे हैं, वह मेरे क्षेत्र, मेरे समुदाय, मेरे कार्यस्थल पर लागू नहीं होता।' इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ हर सूरत में सहायकों को एक सुरक्षात्मक स्थिति में ले आती हैं और अक्सर समूह में उदासीनता लाती हैं। समूह द्वारा उत्पन्न सूचना और जानकारी का विश्लेषण मदद करता है कि वे प्रक्रिया में गहरे शामिल हों और यह प्रशिक्षु को अपने स्कूल तथा बच्चों के साथ जुड़ने में भी मदद करता है।

- प्रक्रिया के अन्त में इसे सुगम बनाने में सहायक व्यक्ति स्थितिनुसार जानकारी, विचार, वैकल्पिक शिक्षणशास्त्र साझा करता है। जब प्रशिक्षु स्वयं एक छोटे समूह में वह सब उत्पन्न करते हैं जिसकी जरूरत उन्हें शिक्षक के तौर पर है, तो उस प्रक्रिया की ताकत से वे उत्साहित और प्रोत्साहित होंगे। इस स्थिति में जानकारी या धारणाएँ या 'कठिन बिन्दु' भी एक बिल्कुल ही नया अर्थ ग्रहण कर लेंगे। असल बात वह नहीं है जो प्रशिक्षक द्वारा प्रशिक्षुओं से कही जाती है बल्कि वह, जो प्रशिक्षु एक-दूसरे से कहना चाहते हैं और प्रशिक्षकों या सहायकों से विशेष मदद माँगते हैं।

- इस प्रकार जानकारी/ ज्ञान/ विचारों का लेन-देन एक रचनात्मक काम बन जाता है, जिसमें प्रशिक्षुओं के ज्ञान की बुनियाद को टटोला जाता है जिससे वे अपनी योग्यता के बारे में भी आश्वस्त होते हैं और उनकी आत्म-छवि को एक उभार मिलता है। इससे उन्हें प्रशिक्षण की प्रक्रिया के साथ खुद को जोड़ने, उसे अपनाने का मौका मिलता है। यह महसूस करने का मौका मिलता है कि इस प्रक्रिया को उन्होंने स्वयं आकार दिया है। संक्षेप में, सहायक को समूह के सामूहिक ज्ञान का लाभ उठाना होगा, समूह को अपनी राय और विचारों की अभिव्यक्ति का मौका देना होगा और फिर इसके बाद के सत्रों में इसके आधार पर आगे बढ़ना होगा।

सीखने की अनुभव आधारित प्रक्रिया (या अनुभव आधारित प्रशिक्षण) में दिल और दिमाग दोनों शामिल रहते हैं। जब दिल किसी बात के लिए तैयार रहता है तो जानकारी, ज्ञान और रणनीतियाँ तुरन्त आत्मसात हो जाते हैं। दिल किसी बात का कायल हो जाए, इसके लिए न केवल यह आवश्यक है कि प्रशिक्षु की नजर में जानकारी प्रामाणिक हो, बल्कि यह एक ऐसे शीशे की तरह होना चाहिए जो 'सत्य' को उसी तरह प्रतिबिम्बित करे जैसा कि उसे प्रशिक्षुओं के द्वारा देखा जाता है। यह बात उन प्रशिक्षण-कार्यक्रमों के लिए महत्वपूर्ण है जो नजरिए में परिवर्तन लाना चाहते हैं – और सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं के लिए भी।

एक और महत्वपूर्ण मुद्दा है जिसे आमतौर पर भुला दिया जाता है – सामान्य-बुद्धि की अहमियत और मूल्य की पुन: पुष्टि करने का मुद्दा जो हमें शिक्षक के तौर पर अपने दैनिक अनुभव को शैक्षिक प्रक्रियाओं के साथ सम्बद्ध करने में मददगार होता है। शिक्षकों में समाज, प्रभावशाली पूर्वाग्रहों, स्कूल, पाठ्यचर्या और शिक्षण-पद्धतियों पर आलोचनात्मक सोच-विचार करने की सामर्थ्य होती है। जो प्रशिक्षण प्रशिक्षुओं को पेशेवर दृष्टिकोण और सामान्य-बुद्धि के अंशों का मेल-जोल करने से रोकते हैं, वे अनुभवजन्य यथार्थ को खण्डित करते हैं। इन दो संसारों के बीच पुल बनाए जाने से महत्वपूर्ण, मूल्यवान अन्तर्दृष्टियाँ मिलती हैं।

सेवाकालीन प्रशिक्षण के एक नव-निर्मित ढाँचे को उपरोक्त सिद्धान्तों का समर्थन करना होगा। सहायकों के एक समूह को शिक्षकों के समूह के साथ पूरे प्रशिक्षण के दौरान रहना होगा। उन्हें प्रशिक्षण में ऐसे अभ्यास पिरोने होंगे जो शिक्षण-पद्धतियों को कक्षा के वातावरण के साथ जोड़ने में शिक्षकों की मदद करें। सब विद्यार्थियों का समावेश तब सम्भव होगा जब प्रशिक्षकों द्वारा प्रशिक्षण में भाग लेने वाले सब शिक्षकों का शामिल होना सुनिश्चित किया जाए। इसी तरह शिक्षक-अध्यापक भी प्रशिक्षण में जागरूक रहकर ऐसा करेंगे तो शिक्षक भी सुनिश्चित करेंगे कि वे कक्षा में प्रत्येक बच्चे तक पहुँच पाएँ। वे यह पता लगाने के तरीके निकालेंगे कि कक्षा में मौजूद प्रत्येक इन्सान उनके साथ है। इस सबके लिए सहभागिता सुनिश्चित करने वाले शोध के औजारों का रचनात्मक इस्तेमाल, और शिक्षकों को न केवल प्रशिक्षण-कार्यक्रमों के 'विषय' सम्बन्धी लक्ष्यों बल्कि इससे भी महत्वपूर्ण, शिक्षा-पद्धतीय लक्ष्यों को पूरा करने के लिए प्रोत्साहित करना शामिल है।

नए विचारों और संसार को देखने की एक अलग, नई दृष्टि के सम्पर्क में आना, और नई अन्तर्दृष्टि को व्यवहार में लाना – सीखे हुए को अनसीखा किए जाने के सतर्क प्रयासों के साथ-साथ यह सब भी होना होगा। हमें "कुशल विशेषज्ञों" या "शिक्षक-शिक्षकों" या "शिक्षा-प्रशासनिकों" के तौर पर पहले वह सब भुलाना और छोड़ना होगा जो हम बिना सोचे-समझे करते रहे हैं और शुरुआत करना होगी सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा के प्रति वैकल्पिक नजरियों और निर्माण-ढाँचों की एक सच्ची खोज और जाँच-पड़ताल की।

विमला रामचन्द्रन एजुकेश्नल रिसोर्स युनिट, नई दिल्ली से हैं। वे महिला समता के लिए शिक्षा से सम्बद्ध महिला समाख्या की संकल्पना करने में शामिल रही हैं। वे भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय में 1988 से 1993 तक प्रथम राष्ट्रीय परियोजना निदेशक रही हैं। उन्होंने 1998 में एजुकेश्नल रिसोर्स युनिट की शिक्षा पर काम करने वाले शोधकर्ताओं तथा प्रेक्टिशनरों के नेट्वर्क के रूप में स्थापना की, जिसे अब ई.आर.यू. कन्सल्टेन्ट्स प्राइवेट लिमिटिड के नाम से जाना जाता है। वे न्यूपा (नेशनल युनिवर्सिटी ऑफ एजुकेश्नल प्लानिंग एण्ड एड्मिनिस्ट्रेशन) में नेशनल फैलो तथा शिक्षक प्रबन्धन एवं विकास की प्रोफेसर रही हैं। वे प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में शोध करती रही हैं। इसके केन्द्र में लैंगिकता एवं समता के मुद्दे, शिक्षक का रुतबा और प्रोत्साहन, प्राथमिक शिक्षा, प्रौढ़ साक्षरता एवं निरन्तर शिक्षा के लिए राष्ट्रीय नीतियों और कार्यक्रमों के समता सम्बन्धी लक्ष्यों को हासिल करने की राह में व्यवस्थागत बाधाएँ हैं। हाल के समय में वे स्कूल से बाहर युवाओं, विशेषकर लड़कियों, की शैक्षिक आवश्यकताओं पर काम में व्यस्त रही हैं। उनसे vimalar.ramachandran@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवाद :** रमणीक मोहन